उससे भी व्योमस्थ हंस का बृहत क्षितिज विस्तार।
समझो तथ्य क्रमेलक[1] करलो निज भ्रम का उपचार।।38

अपनी भेड़ों हेतु खोजता, नवल[2] घास के क्षेत्र।
फिरता आजीवन धरणी पर, लिप्सा व्याकुलनेत्र।। 39

खाता जाता जीवनक्रम में, निजपालितपशुमांस।
फिर भी उसको निज सद्गति पर, है अटूट विश्वास।। 40

नगहरीतिमा[3] देख दूर की प्रमुदित भेड़समूह ।
नहीं जान पाता पालक का, निर्मम बंचक व्यूह।। 41

कोमल बस परिधान[4] धारता, भीतर दृढ़ पाषाण।
बढ़ता जाता साथ समय के, मरूथल का परिमाण[5]।। 42

करता टीले सृजित रेत के, पुनः मिटाता तूर्ण[6]।
बीत गये युग किन्तु न हिंसा, दिखती होती पूर्ण।।। 43

चिर तक संचित रख सकता बस, अतिपुराण अवशेष।
नीरसता ने यही योग्यता, दी है इसे विशेष।। 44

1. ऊँट 2. नया 3. पर्वत की हरियाली 4. वस्त्र 5. आकार 6. शीघ्र



## अध्याय तृतीय - सन्देश

पहुँचा देना मरू तक मेरा, हितकारी सन्देश।
फिर भी रहे युयुत्सु[1] धारना, तुम योद्धा का वेश।। 1

क्षुद्र जन्तुओं को ही आश्रय, दे सकते मरूबन्धु।
देवभूमि पर अगणित[2] स्थावर[3], जंगम[4] का है सिन्धु।। 2

शान्त निशा में तुम्हें दीखते, जितने तारक वृन्द।
उससे अधिक जीव भारत में, फिरते हैं स्वच्छंद।। 3

मत भ्रम पालो निज महत्व का, निर्जीवनविस्तार।
सप्तमांश जगजीवन पाता, यहां अमेय[5] दुलार।। 4

तुम आच्छादनपर[6] परंतु हम, अनावरण को श्रेय।
सदा मानते सत्यान्वेषी, तत्व हमारा ध्येय।। 5

1. युद्ध के लिए उत्सुक 2. असंख्य अनेक 3. वृक्ष आदि 4. प्राणी गतिमान जीव 5. जिसे मापा न जा सके 6. ढांक लेने की प्रवृत्ति वाला

उपयोगी अति पालित पशु को, भी सकते तुम मार।
यहॉ श्वान अनुगामी पाता, स्वर्वेशन[1] अधिकार।। 6

केवल कण्टक द्रुम उपजाने, में ही तुम हो शक्त[2]।
हम सौरभयुतवारिजदल[3] में, चंदन में अनुरक्त।। 7

विविध वर्ण के कुसुम हमारी, निधि तेरा धन रेणु[4]।
भेरी[5] घोष तुम्हें प्रिय संतत, हमें रही प्रिय वेणु[6] ।। 8

रजोविनिग्रह[7] लक्ष्य हमारा, तेरा रज विस्तार।
रूपसृजनरूचिचित्त तुम्हें प्रिय, आकृति का संहार ।। 9

तुम जीवन[8] के हो अवशोषी, हम सींचें रसधार।
ध्वंस तुम्हें प्रिय हमें सर्जना, से है प्रीति अपार।। 10

तुम पटु अवशोषक हो जल के, जलनिधि ही निःशेष[9]।
ऋषि अगस्त्य पी गए तपोबल, देख चुका वह देश ।। 11

रस अवशोषक रहे पुरातन, मरू फिर भी उत्तप्त।
आदानैकवृत्ति[10] को देखा, किसने होते तृप्त।। 12

हम पीपल चिर जीव ऋतुज, तुम तरु सशल्य[11] अल्पायु।
हम सुरभित समीर शीतल तुम तरु तप्त रेणुधर वायु।। 13

1. स्वर्ग में प्रवेश 2. समर्थ 3. सुगंधित कमल समूह 4. धूल 5. युद्ध वाद्य 6. वंशी 7. रजोगुण का नियंत्रण 8. जीवन–जल 9. सम्पूर्ण 10. जो केवल लेना जानता है 11. कण्टक युक्त



कुपित वहॉ पर प्रकृति बनाती जीवन तक संघर्ष।
यहॉ तनयवत पाल सुगमतर, करती नर उत्कर्ष।। 14

हव्य – वाह[1] है अनल यहॉ पर, जिससे तुम पुर दाह।
करते जाते अभियानों में, धर मारक उत्साह।। 15

सदा अन्य पर करते रहते, तुम निक्षेपित रेणु।
यहॉ मात्र निज वपु पर करते, गज तक सहित करेणु[2]।। 16

यहॉ विजय भी लाती उर में, करूणा का उद्रेक[3]।
विषम पराजय, भी जनती है, तुममें बस उत्सेक[4]।। 17

तुम होते उन्मत्त अन्य से, पाकर भी लघु शक्ति।
हम होते बलवान साथ ही, बढ़ती शम[5] संपत्ति।। 18

मकड़ी वृश्चिक सर्प गोधिका[6], का ही तू है धाम।
नहीं भाग्य में तेरे केकी [7], का नर्तन अभिराम।। 19

निष्प्रयोज्यता को तुम अपनी, समझो सिकतासिन्धु[8]।
यद्यपि क्षणजीवी वर[9] तुम से, विमल ओस के बिन्दु।। 20

प्रति द्वंद्विता न कर अरण्य[10] से, क्योंकि पलायन मात्र।
परिणति[11] होगी दुस्साहस की, होगा व्रणयुत[12] गात्र।। 21

1. हवन सामग्री को देवताओं तक पहुँचाने वाला 2. हथिनी 3. उफान आधिक्य 4. अहंकार, दर्प 5. शान्ति 6. गोह, छिपकली 7. मयूर 8. मरूस्थल 9. श्रेष्ठ 10. वन, जिससे युद्ध न किया जा सके 11. परिणाम 12. घाव भरा

तुम्हें युयुत्सा[1] से न मिलेगा, कुछ भी क्षति से भिन्न।
बार–बार अभियान चलाकर, क्यों होते हो खिन्न।। 22

रवि अभितप्त पवन से ताड़ित, वरूण कृपा से हीन।
रिपुता पावक[2] से अब करते, क्या होने को लीन ?।। 23

यदि आयुध जीविता[3] तुम्हारी, एक मात्र है वृत्ति [4]। 15
तो फिर स्वर्ग प्राप्ति निश्चित है, रणभू से अनिवृत्ति [5]।। 24

मेरू कहाँ बन सकते मरू तुम, रहे दुराशा पाल।
बजरी रेत बिखरते ज्यों ही, कुछ उठता है भाल।। 25

विपुल भुजा विस्तार कंटकित, वसु[6] संचयन प्रवीण।
छाया रहित स्नुही[7] से रेणुधि[8], भोग योग्य फल हीन।। 26

नभ में उत्थित प्रबल पताका, दर्शित करती दम्भ।
उत्प्रेरित वह पवन वेग से, अस्थिर धूलि स्तम्भ।। 27

पवनजातविस्तार[9] दूर तक, होता जो प्रतिभात।
सार भाग खो रहे रेणु निधि[10] , यह तुमकों अज्ञात।। 28

लङ्घनीय[11] यदि तुमको लगती, हिमगिरि की प्राचीर।
हमकों भी अलंघ्य क्यों होगी, विस्तृत भूमि अनीर[12]।। 29

1. युद्ध की कामना 2. अग्नि 3. लड़ना ही जिसकी आजीविका हो 4. आजीविका 5. न लौटना 6. जल, धन, मणि 7. सेंहुड़ का कटीला वृक्ष 8. मरूस्थल 9. वायु द्वारा उठाए गए रेत का दूर तक जाना 10. मरूस्थल 11. पार करने योग्य 12. शुष्क जल रहित



बढ़ो न हथियाने को पर[1] के, सुरभित बहु उद्यान।
पाकर तेरा ताप बनेंगे, वे विस्तृत श्मशान।। 30

तुम्हें रोपने हैं वे तरूवर, जो मरू के अनुकूल।
लेते ढाल स्वयं को धरते, यद्यपि पैने शूल।। 31

वह हरीतिमा श्लाघ्य[2] चिरस्था, देगी बहु परितोष।
उसमें भी हैं मृदुल पुष्प फल, सर्जन[3] नहीं सदोष[4]।। 32

पर लगता है समय और श्रम, सृजन चाहता त्याग।
पर–अनुभूतिग्रहणक्षम उर हो, तब मिलता अनुराग।। 33

निर्जनता में छिपी तुम्हारी, जन विस्तारी चाह।
किन्तु स्त्रोत उसका सर्जन है, नहीं ध्वंस की राह।। 34

जो भवभूतिद[5] हो न निरर्थक, है ऐसा विस्तार ।
विलयन[6] भी वह श्रेष्ठ मेघवत, वरसा कर रसधार।। 35

यदि विकास हित धन व्यय होता, तो आश्रित जनहर्ष।
तुम्हें दिलाता मान जगत में, सुदृढ़नींव उत्कर्ष।। 36

पाली पर यह भ्रान्ति हाथ में, आते ही दृढ़ शस्त्र।
भूमि, भवन, वैभव आएगा, क्या हैं भोजन वस्त्र।। 37

1. दूसरे के 2. प्रशंसनीय 3. सृष्टि 4. दोष युक्त 5. लोक कल्याणकारी 6. विलीन होना

है धन हरण सरल पर उसका, अर्जन बहुत कठोर।
रक्षण उससे कठिन चाहिए, चारित्रिक बल घोर।। 38

कुछ तो सीखो तुम अतीत से, समझाता इतिहास।
लूटी निधियां अमित[1] किन्तु है, अब क्या मेरे पास।। 39

छल, हिंसा, षड़यंत्र भोग ही, लाया वह धन साथ।
रिपुरक्ताञ्जित स्वर्ण रॅग गया, स्वजनरूधिर में हाथ।। 40

अनयार्जित[2] संपदा वस्तुतः, है विनाश संकेत।
बरबस जाती निकल मनुज की, मुट्ठी से ज्यों रेत।। 41

होकर भी वसुयुक्त[3] रहोगे, तुम शाश्वत वसुहीन[4]।
तनुवसुता[5] अप्रभावित मोदित, हम वसुमान[6] अदीन।। 42

आयुध दे सकता है केवल, हिंसा और विनाश।
उभय पक्ष में विजय पराजय, का अस्थिर आभास।। 43

केवल आयुध बल से स्थापित, संस्कृतियाँ क्या शेष।
कहाँ गए वे किए जिन्होंने, निर्जन भूमि प्रदेश।। 44

ताप बढ़ाकर दिखा रहे हो, तुम उल्टे आकार।
मनुज–मनुज को समझ रहा है, अरि भूतल का भार।। 45

1. विराट 2. अनीति से एकत्र की गई 3. धन युक्त 4. जल हीन 5. निर्धनता
6. कान्तियुक्त



करना केवल विलग जानता, जो शरीर से प्राण।
उसकी दूषित धी[1] कर सकती, कैसे नव निर्माण।। 46

कर सकते न विश्रब्ध[2] मनुज को, आयुध के भण्डार।
बल का आश्रय वे ही लेते, जिनको दिखती हार।। 47

तलवारों से नहीं कभी भी, जोते जाते खेत।
जहां सञ्चरित अश्वारोही, उड़ती है बस रेत।। 48

आयुध, अश्व, पताका, सैनिक, साधन भी थे साध्य[3]।
बीत गया वह समय कि जब था, केवल बल आराध्य[4]।। 49

यद्यपि अन्योन्याश्रित जग में, रक्षा और विकास।
प्रतिस्थाप्य[5] ये नहीं अन्यथा, होता केवल ह्रास।। 50

सुदृढ़ दुर्ग निर्मिति उपयोगी, यद्यपि हैं पाषाण।
आश्रित जनको नहीं क्षुधा से, वे दे सकते त्राण[6]।। 51

परिखा[7] निर्मित कर सकते हैं, और तुङ्ग[8] प्राचीर।
कहां अश्म[9] दे पाते प्यासे, प्राणी को शुभ नीर।। 52

यदि हो जाए सजल न दूषित, हो जाती है रेत।
त्यागो कल्पित भीति[10] न मरू को, खा सकते हैं खेत।। 53

1. बुद्धि 2. आश्वस्त 3. लक्ष्य उद्देश्य 4. पूजा योग्य 5. एक दूसरे का विकल्प बनने योग्य
6. छुटकारा रक्षा 7. खाई 8. ऊँची 9. पत्थर 10. भय

कल–कल कर बहती सरिताएँ ख़ग कूजित उद्यान।
निगल गए क्रमशः बढ़ते तुम कर बस्ती शमशान।। 54

कितने ही खण्डहर दबे हैं, जरा हटाओ रेत।
अब भी सोच ध्वंस से तुझको, क्या था मरू अभिप्रेत[1]।। 55

उग सकते थे स्वर्णिम आभा, लिए जहाँ गोधूम[2]।
उन विस्तृत खेतों से उठता, मन अवसादी[3] धूम।। 56

पोस्त[4] उग रहा जहॉ कभी थे, विस्तृत द्राक्षाक्षेत्र[5]।
हेमप्रभालोभी[6] कर देते, अगणित निष्प्रभ नेत्र।। 57

सहनी पड़ती विषम वेदना, तब जगता वात्सल्य।
त्याग सृजन में क्षेम क्षांन्ति में, जीवन का साफल्य।। 58

खिले चित्त देखो जब अरूणिम, कलिका का संभार।
अगणित दीर्घ सुपक्व[7] सरसफल, भार विनम्र अनार।। 59

फले पुनः अक्षोट[8] विपुल तर स्तबकवान अंगूर।
लौटे पुनः कृषकमुख आभा, नयनों का वह नूर।। 60

फिर बज उठे रबाव[9] छन्दतः[10], मुखरित हो मृदुगान।
हो विलुप्त चिर त्रास[11] मनुजता, फिर पाए सम्मान।। 61

1. वांछित 2. गेहूँ 3. विषादकारी 4. अफीम का पौधा 5. अंगूर के खेत 6. स्वर्ण की कांति का लोभी 7. भली प्रकार पके हुए 8. अखरोट 9. वाद्य यंत्र 10. स्वछन्दता से स्वतः 11. भय



केवल छल–बल हिंसा, आयुध, विजय, पराजय, खेद।
जाना जिसने नहीं जानता, वह जीवन के भेद।। 62

पीड़ा, अत्याचार, कुशंका, भय, बारूदीगन्ध।
केवल जानी, परम अज्ञ वह, जीवन से मतिमन्द[1]।। 63

नही विकास सुफल परिणामी, कुसुमित यदपि बबूल ।
दुर्जन का विस्तार न भूतिद[2], केवल दुःख का मूल ।। 64

वही उच्चता श्लाघ्य समाश्रय, छाया से भरपूर ।
मोघ[3] तुंगता[4] तेरी है मरू, जैसे वृद्ध खजूर ।। 65

तप्त रेणु मय कभी उठाते, अंधड़ होकर कुद्ध ।
बस उर्वरता ह्रास दृष्टि भी होती तव अवरूद्ध ।। 66
जिसको सखा समझते मरू तुम, उत्प्रेरक जो वात [5] ।
सार भाग हर रहा, हो रहे, नीरसतर प्रतिप्रात ।। 67

ताप विषमता जात निशा में, उठती शैलकराह ।
उसे समझ हुंकार न पकड़ो, तुम आक्रामक राह ।। 68

सब रज से उद्भूत पुनः होता है रजोनिलीन[6]।
देख रहे अनवरत मरूस्थल फिर भी ज्ञान विहीन।। 69

1. मन्द बुद्धि 2. कल्याणप्रद 3. व्यर्थ 4. ऊँचाई 5. पवन 6. धूल में विलीन

सिकता चय[1] निर्मित हैं कितने अस्थिर सब भूरूप।
अनुभव करके भी न त्यागते मन के भाव कुरूप।। 70

जागो अब भी देखो कर में जो करवाल[2] कराल[3]।
तीक्ष्ण दुधारी है कर सकती अपना भी तनु लाल।। 71

1. रेत के ढेर 2. तलवार 3. भयानक



## अध्याय चतुर्थ - उत्तर

क्या प्रत्युत्तर लेकर आये, विनत वदन तुम दूत।
क्या विवेक जागा अरि उर में, करूणा हुई प्रसूत।। 1

नहीं नहीं सद्भाव हमारा, लौटा खाली हाथ।
मात्र व्यंग उपहास पोटली, लाया ढ़ोकर साथ।। 2

बोला मरू तुम पहले से ही, हो मृत देह समान।
बस अन्त्येष्टि हेतु हम सत्वर, जुटा रहे सामान।। 3

उष्ट्र[1] हमारे तृषित[2] तुम्हारे, गज करते हैं स्नान।
शिविर हमें बस सुलभ बनाए, तुमने धाम महान।। 4

हम रहने को विवश प्रकृति का, शासन जहाँ कठोर।
तुम पुष्कलता[3] मध्य केलिरत, मोद प्रसृत[4] चहुँ ओर।। 5

1. ऊँट 2. प्यासे 3. प्रचुरता, आधिक्य 4. फैला हुआ